IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

"संगीत जीवी जातियों का जोधपुर रियासत के लोक संगीत के संरक्षण में योगदान"

दीपक कुमार घारू
शोधार्थी, संगीत विभाग
राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. रौशन भारती
प्राचार्य,
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

सारांश :–

राजस्थान अपने लोक संस्कृति एवं सांस्कृतिक विरासत के लिए भारत ही नहीं, अपितु विश्व में जाना जाता है। यहाँ महल, मन्दिरों, हवेलियों, राज–रजवाड़ों और दूर–दूर तक फैले मरुस्थल प्रदेश तो है ही साथ ही इस प्रदेश में लोक संगीत की अपनी अलग विरासत है। इस लोक संगीत के संरक्षण में यहाँ की विशेष जातियों का योगदान है जो यहाँ की लोक संस्कृति, लोक गायन, वादन एवं नृत्य के संरक्षण में कार्य करते हैं। यही इनके जीविकोपार्जन का माध्यम भी है। परन्तु वर्तमान समय में लोक संगीत के संरक्षण करने वाली इन जातियों की आर्थिक स्थिति सही नहीं है। जिसके कारण जोधपुर के लोक संगीत की संस्कृति को विश्व पटल पर पहचान दिलाने वाली यह जातियाँ प्रायः लुप्त होती जा रही है। इस कारण मैं अपना शोध पत्र इस विषय पर लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। जिससे इन संगीत जीवी जातियों का संगीत के प्रति समर्पण एवं त्याग जन सामान्य तक पहुँच सके।

मुख्य शब्द :– लोक संगीत, जातियाँ, संस्कृति।

परिचय –

राजस्थान की लोक संस्कृति अत्यन्त समृद्ध है। यहाँ का संगीत, संस्कृति का संवर्धन एवं प्रस्तुतीकरण विश्व स्तर पर करता है। यहाँ की जातियाँ, संगीत के संरक्षण एवं संगीत साधना से अपनी जीविकोपार्जन करती हैं। यहाँ इन जातियों में मुख्यतः ढोली, भगत, ढाढी, राणा, जोगी आदि जातियाँ मुख्य है। जो राजस्थानी संगीत के संरक्षण में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। राजस्थान में उक्त जातियाँ आज भी गा–बजाकर अथवा नृत्य कर अपना जीविकोपार्जन करती हैं। इनका अपना विशेष महत्व है।

शताब्दियों से वंशानुगत परम्परा के क्रम में गाने बजाने और नाचने की कला को अपनाकर इन जातियों ने गायकी को जीवित रखा है। संगीत का व्यवसाय अपनाने के कारण इन्हें समाज में सम्मानजनक स्थान नहीं मिला। इनको हीन दृष्टि से देखा गया, किन्तु इन्होंने चिन्ता नहीं की। समाज द्वारा इनकी उपेक्षा की गयी, आर्थिक समृद्धि भी इनसे दूर रही, फिर भी ये जातियाँ अपनी परम्परागत कला के प्रति समर्पित रही। अपनी कलात्मकता के लिए जो प्रशंसा इन्हें मिलती रही, उसी को पूंजी मानकर ये जातियाँ अपनी कला साधना में लीन रही। इन पेशेवर जातियों की तपस्या के अनवरत क्रम ने उन्हें विशिष्टता प्रदान की है। इनमें से कुछ तो ऐसी जातियाँ है, जिनके कण्ठ स्वभावतः मधुर होते हैं, आवाज मीठी होती है, पतली अथवा मोटी होती है, किन्तु उसका अपना विशेष माधुर्य है। कण्ठ इतने मधुर होते हैं कि कुछ तो ऐसा लगता है मानो जन्म से ही गाते आ रहे हैं।

इन जातियों द्वारा गाये हुए प्रचलित गीतों पर गायकी की दृष्टि से इन जातियों की विशेष छाप रहती है। वर्तमान में स्थिति बदल गई है। आकाशवाणी, दूरदर्शन और चलचित्र के प्रचलन का व्यापक प्रभाव इनकी गायकी व व्यवसाय पर भी हुआ है, इनके गाने–बजाने को सुनने के बजाय अब आकाशवाणी पर गीत सुनना अधिक पसन्द किया जाता है। टी.वी. पर गाना–बजाना भी सुनते हैं और गायकों व वादकों को भी देखते हैं। फलतः कई जातियाँ धीरे–धीरे इस पेशे को छोड़कर जीविकोपार्जन के लिए अन्य व्यवसाय को अपनाने के लिए विवश हो रही है। यदि इन जातियों को गाने–बजाने की कला के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन न मिला, तो अनेक वाद्यों को बजाने वाले कलाकारों की संख्या कम होने लगेगी। मैं अपने लेख के माध्यम से इन जातियों की सांगीतिक विशेषताओं एवं सांगीतिक संघर्ष की गाथा को प्रस्तुत कर रहा हूँ, जो इस प्रकार है –

1. ढोली – ढोली, जोधपुर की व्यावसायिक गायक जाति है जो कि विवाह–शादी और सन्तान जन्मोत्सव आदि मांगलिक अवसरों पर गीत गाने का कार्य करती है। इस जाति के लोग ढोल बजाने में दक्ष व निपुण होते हैं। इसी निपुणता के कारण ये लोग ढोली कहलाए। इनके यजमान – ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रीय, सुनार, दर्जी आदि होते हैं। ये कलाकार इनसे मिलने वाली पारितोष, इनाम, आर्थिक सहायता से ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इस जाति के लोग हारमोनियम, ढोल अथवा ढोलक के साथ बड़े अच्छे गीत गाते हैं।

   परम्परागत गीत गाने वाले इन गायकों का लोकगीत गायन में अपना एक अलग ही अनूठा अन्दाज है। ढोली जाति के गायन में जहाँ एक और लौकिकता के दर्शन होते हैं, तो कहीं–कहीं शास्त्रीयता का भी सहज भाव प्राप्त होता है।

   पेशेवर लोक कलाओं के संरक्षण में इस जाति को अन्य जातियों में सबसे श्रेष्ठ माना गया है। इनकी स्त्रियाँ भी राजस्थान के सभी प्रकार के गीतों को गाने में प्रवीण होती हैं। इनकी आवाज सुनने में बहुत कर्णप्रिय व सुरीली होती है।

   लोकगीतों को गाने के लिए एक प्रकार से इनको ईश्वरीय देन प्राप्त है। इस जाति के पुरूष भी गाने में बहुत ही प्रवीण होते हैं तथा इनमें से कुछ लोग वाद्य यंत्र जैसे शहनाई, ढोलक, तबला, सारंगी, नगाड़ा आदि बजाने में भी दक्ष होते हैं। राजस्थान में मांड परम्परा को इन्होंने ही जीवित रखा है।

   ढोली जाति के लोग अपनी श्रेष्ठता और प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए अपना सम्बन्ध शिव–पार्वती से मानते हैं तथा अपना जन्म भी गन्धर्वों से बताते हैं। यहाँ के लोगों में यह कहावत प्रसिद्ध है कि – ''ढोलियों रे अठै ब्याव के गीता री कोई कमी'' अर्थात् ''ढोलियों के घर पर शादी है तो गीतों की क्या कमी रह सकती है।''

2. भगत (साध) – भगत जाति, नाच–गाकर अपनी जीविका चलाने वाली वह जाति है जो वैश्याओं के रूप में जानी जाती है। वैसे तो मध्यकाल में मन्दिरों में गायन करने वाली भगत एवं अन्य

स्थानों पर नृत्य करने वाली वैश्याएँ कहलाती थी। ऐसा भी कहा जाता है कि साधु समाज की कन्याओं का विवाह जब उनके समाज में नहीं हो पाता, तो वह आगे चलकर भगत वर्ग बना। ये वैष्णव धर्म को मानने वाले होते थे। वर्तमान समय में यह जाति लुप्त प्राय है।

3. जोगी – योगी शब्द से जोगी बना है। जोगी जाति के लोग पुंगी वाद्य यंत्र बजाते हैं। इनका मुख्य कार्य पुंगी द्वारा साँप पकड़ना, झाड़–फूँक करना एवं नृत्य करना भी इनका एक प्रमुख कार्य माना जाता है। जोगी जाति के लोग गुरू गोरखनाथ जी के अनुयायी होते हैं। जोधपुर में नाथ पंथी लोग भरतहरी, गोपीचन्द तथा शिवजी आदि के ब्यावलों जैसे प्रबन्ध गीतों को चातुर्मास में गाकर सुनाते हैं। इन गीतों को सारंगी वाद्य की संगत के साथ गाते–बजाते हैं। इनकी सारंगी छोटी होती है। ये जोगियों की सारंगी कहलाती है, ये घुमन्तु जाति है।

4. ढाढी – ढाढी लोग अपने यजमानों को विरुदावली सुनाते हैं। विवाह के अवसर पर ये सभी सामूहिक रूप में अपने यजमानों के यहाँ उपस्थित होते हैं। इन्हें यजमानों की वंशावली कण्ठस्थ होती है। इनका पेशा या पारम्परिक काम गाने–बजाने का ही रहा है। ढाढी, सारंगी या रबाब बजाते हैं। ढाढी, हिन्दु व मुस्लिम दोनों होते हैं। इनकी उत्पत्ति राजपूतों से मानी जाती है, वैसे मुस्लिम ढाढी भी हिन्दू रीति–रिवाज ही अपनाते हैं। मध्यकाल में ये लोग युद्ध भूमि में वीरों को उत्साहित करने के लिए गाते–बजाते थे।

   मारवाड़ के क्षेत्र में ये अधिक संख्या में निवास करते हैं। इस वर्ग में नृत्य करना अपमानजनक माना जाता है। ये लोग, विवाह अपनी जाति में ही करते हैं। ढाढियों की मुख्य खांपे (उपशाखायें) बाबरा, सिंहोल, बागडवा, डंडण, मालणा आदि हैं।

5. राणा – इनका मुख्य कार्य नगाड़ा बजाना है। राणा लोगों का कहना है कि वे रणक्षेत्र में धूसे पर चोट मारते थे, इसलिए इन्हें राणा कहा गया, पिछले कुछ वर्षों से राणाओं द्वारा यह कार्य विवाह के अवसर पर भी किया जा रहा है। युद्ध का नगाड़ा (धूसा) बजाने के कारण ये लोग राणा कहलाए।

   मुस्लिम मिरासी भी नगाड़ा बजाने के कारण राणा कहलाए हैं। राणा गाने–बजाने का काम करते हैं। ये लोग राजपूतों के जैसा ही जीवन बिताते हैं।

निष्कर्ष –

जोधपुर रियासत में लोक संगीत अत्यन्त समृद्ध रहा है। मैंने अपने शोध पत्र में यहाँ की विशेष संगीतजीवी जातियों के सांगीतिक योगदान एवं संरक्षण का उल्लेख किया है। इस दौरान मैंने महसूस किया है कि जोधपुर रियासत के ये कलाकार वर्तमान समय में दयनीय स्थिति में है। जिससे ये रियासत की लोक संस्कृति एवं लोक संगीत को छोड़ जीविकोपार्जन के अन्य माध्यम खोज रहे हैं। इस कारण यहाँ का लोक संगीत लुप्त होता जा रहा है।

इन जातियों के संरक्षण के लिए सरकार एवं राजघरानों द्वारा इन्हें जीविकोपार्जन के लिए नौकरी उपलब्ध करवाना चाहिए। जिससे यह निश्चिंत होकर लोक संगीत की साधना एवं संरक्षण कर सके। प्रस्तुत विषय पर शोध की संभावनाएँ अभी अपेक्षित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. चक्रवर्ती, डॉ. कविता : ''राजस्थान के लोक वाद्य'', राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण, 2024
2. गौस्वामी, डॉ. प्रेमचन्द्र : ''राजस्थान : संस्कृति, कला एवं साहित्य'' 10वां संस्करण, 2016
3. कल्ला डॉ. वन्दना (2014) : ''राजस्थान के लोक तत् वाद्य'', राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण : पृ.सं. 89
4. चौधरी प्रताप सिंह (2009) : ''राजस्थान : सगीत और संगीतकार'' राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, संस्करण
5. दत्ता, डॉ. क्षीर सागर (2020) राजस्थान के संगीतज्ञ एवं उनकी साधना, प्रकाशक राजस्थानी ग्रन्थागार, प्रथम संस्करण